वैदिक का संकल्प

डॉ. वेदप्रताप वैदिक

डॉ. वेदप्रताप वैदिक पत्रकार, वक्ता और शोधार्थी के रूप में जाने जाते हैं। उन्होंने हिन्दी को उचित सम्मान देने के लिए भी कार्य किया। एक राजनीतिक विश्लेषक और स्तंभकार के रूप में उनकी उपस्थिति प्रिंट और इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों देखी जा सकती है। राष्ट्रीय और अन्तरराष्ट्रीय राजनीति के जानकारों के रूप में उनकी ख्याति है। वे करीब 10 साल तक प्रेस ट्रस्ट ऑफ इंडिया में कार्य कर चुके हैं। हिन्दी समाचार एजेंसी 'भाषा' के संस्थापक-सम्पादक के रूप में उन्होंने भाषा से जुड़े कई प्रयोग किए।

वे नवभारत टाइम्स के विचार सम्पादक भी रहे। काउंसिल फॉर इंडियन फॉरेन पॉलिसी तथा भारतीय भाषा सम्मेलन के वे प्रमुख हैं। करीब 200 दैनिक अखबारों में उनका स्तंभ छपता है और कई राष्ट्रीय चैनलों पर उन्हें चर्चाओं में देखा जा सकता है।

डॉ. वैदप्रताप वैदिक ने अपना शोध कार्य अफगानिस्तान विदेश नीति पर किया। इसके अध्ययन के लिए उन्होंने कोलंबिया यूनिवर्सिटी, न्यूयार्वै स्वैूल ऑफ ओरिएंटल एण्ड अफ्रीकन स्टडीज लंदन, इंस्टीट्यूट ऑफ पीपुल्स ऑफ एशिया, मास्को आदि संस्थानों में पढ़ाई की। पीएच-डी के अपने शोध कार्य को उन्होंने अपनी अंग्रेजी के बजाय अपनी मातृभाषा हिन्दी में लिखा और उस दौर में जब हिन्दी को शोध की भाषा नहीं माना जाता था, हिन्दी को सम्मान दिलाने के लिए संघर्ष किया। वेदप्रताप वैदिक ने जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के स्वैूल ऑफ इंटरनेशनल स्टडीज़ में अपना शोध प्रबंध हिन्दी में प्रस्तुत किया था, जिसे विश्वविद्यालय प्रशासन ने अस्वीकार कर दिया और कहा कि वे अपना शोध प्रबंध अंग्रेज़ी में लिखकर दें। वैदिक जी अपना शोध प्रबंध हिन्दी में लिखने पर ही अड़े रहे और अंतत: जीते। उन्होंने अपने मकसद के लिए हिन्दी आन्दोलन के विचार को केवल अखबारों तक सीमित नहीं रखा और सड़कों तक उतर आने में भी गुरेज नहीं रखा।

वेदप्रताप वैदिक ने हर डिग्री हमेशा प्रथम श्रेणी में पाई। दर्शनशास्त्र और राजनीतिशास्त्र उनका विषय रहा। 1971 में उन्होंने दिल्ली के जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय से पीएच-डी की। उनके शोध का विषय था 'अफगानिस्तान में सोवियत अमेरिकी प्रतिस्पर्धा'। उनका यह शोध प्रबंध हिन्दी में था, जिसे भारतीय भाषाओं के संघर्ष का प्रतीक माना गया। अंग्रेज़ी विरोधी आंदोलन के कारण ही उन्हें जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के स्वैूल ऑफ इंटरनेशनल स्टडीज़ से निष्कासित किया गया। हिन्दी में

लिखे शोध प्रबंध पर डॉक्टरेट की उपाधि के लिए लम्बा राष्ट्रीय विवाद चला। अनेक बार संसद में हंगामा भी हुआ। अन्ततः वेदप्रताप वैदिक और उनके सहयोगियों की जीत हुई और भारतीय भाषाओं में उच्च शोध के दरवाजे खुल गए। वेदप्रताप वैदिक ने भारतीय भाषाओं के समर्थन में कई आंदोलन किए और जेल भी गए। 1970 से 1974 तक वेदप्रताप वैदिक दिल्ली के मोतीलाल नेहरू कॉलेज में राजनीति के शिक्षक रहे। उन्हें कई छात्रवृत्तियां मिलीं। वे इंस्टीट्यूट फॉर डिफेंस स्टडीज़ एण्ड एनालिसिस और जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के सीनियर पैलो भी रहे।

एक पत्रकार, शोध छात्र और वक्ता के रूप में उन्होंने करीब 80 देशों की यात्राएं की। राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री और विदेश मंत्री के साथ यात्राएं करने का योग भी उनको मिला। 1999 में वे संयुक्त राष्ट्र संघ में भारतीय प्रतिनिधि के तौर पर व्याख्यान देने के लिए भी आमंत्रित किए गए थे। हिन्दी और अंग्रेज़ी के अलावा डॉ. वेदप्रताप वैदिक फारसी, संस्कृत और रूसी भाषा के भी जानकार हैं। उनकी अनेक पुस्तवैं राष्ट्रीय-अन्तरराष्ट्रीय विषयों पर प्रकाशित हो चुकी है। अनेक राष्ट्रीय-अन्तरराष्ट्रीय सम्मान उनके नाम पर है। अन्ना हजारे और बाबा रामदेव के आन्दोलनों से भी वे जुड़े रहे हैं।

वेदप्रताप वैदिक ने 13 वर्ष की आयु में हिन्दी के लिए सत्याग्रह किया, जिसके लिए उन्हें जेल भी जाना पड़ा। हिन्दी के लिए उनके अभियान पर संसद में कई बार हंगामे हुए, संसद में डॉ. राममनोहर लोहिया, अटल बिहारी वाजपेयी, चन्द्रशेखर मधुलिमये, आचार्य कृपलानी, हीरेन मुखर्जी, प्रकाश वीर शास्त्री, भागवत झा आजाद, हेम बरुआ आदि ने वैदिक का समर्थन किया। स्वैूल ऑफ इंटरनेशन स्टडीज़ ने उनकी छात्रवृत्ति रोक दी थी और संस्थान से बाहर का रास्ता दिखा दिया था, जिसका चारों तरफ विरोध हुआ और आखिर में प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने पहले की और जेएनयू के स्वैूल ऑफ इंटरनेशनल स्टडीज़ का संविधान बदला गया और वेदप्रताप वैदिक की ससम्मान वापसी हुई। उन्होंने हिन्दी पत्रकारिता को अंग्रेज़ी की पत्रकारिता के समकक्ष लाने के लिए लगातार कार्य किया। उन्होंने इस बात को सरासर गलत साबित किया कि केवल अंग्रेज़ी भाषा में ही उच्च अध्ययन और शोध किए जा सकते हैं। अनेक देशी-विदेशी शोध संस्थानों और विश्वविद्यालयों के विज़टिंग प्रोफेसर रहे वेदप्रताप वैदिक ने प्रूफ रीडर के तौर पर पत्रकारिता में शुरुआत की और वे शीर्ष तक पहुंचे।

डॉ. वेदप्रताप वैदिक का मानना है कि सभी बच्चों को अपनी मातृभाषा में भी पढ़ने-लिखने की सुविधा मिलनी चाहिए। दुनिया के सभी प्रगतिशील देशों में चाहे वह यूएसए, ब्रिटेन, फ्रांस, जर्मनी, चीन, जापान, रूस ही क्यों न हो विदेशी भाषा में वहां पढ़ाई नहीं होती। विद्यार्थियों को विदेशी भाषा सीखने में ज्यादा मेहनत करनी पड़ती है। अगर वे अपनी मातृभाषा में गणित विज्ञान या कला की पढ़ाई

करेंगे तो उन्हें विषय को समझने में आसानी होगी। जिन बच्चों को अनिवार्य रूप से अंग्रेजी पड़नी पढ़ती है और जिनका माध्यम अंग्रेजी होता है। उन बच्चों की भारी दुर्दशा होती है, वे बच्चे लगातार तनाव में जीते हैं। वे अपनी भाषा, अपने संगीत, अपनी कला, अपनी परंपरा और अपने नैतिक मूल्यों से दूर होते जाते हैं। वे कोई भी विषय गंभीरता से समझने लायक नहीं रहते। अंग्रेजी के प्रति मोह के कारण ही हम अपने बच्चों को चीनी, जापानी, रूसी, फ्रांसिसी, जर्मन, स्पेनिश जैसी भाषाएं सिखाने की कोशिश नहीं करते। हमें अपनी सारी पढ़ाई मातृभाषा में करनी चाहिए चाहे व हिन्दी हो या मराठी, चाहे तमिल, तेलगु, मलयालम हो या उर्दू उड़िया अथवा असमी। जब विदेशी भाषा की बात हो तब हमें अंग्रेज़ी की पढ़ाई के साथ ही चीन, जर्मनी, फ्रांस, जापान आदि देशों की भाषाएं भी पढ़ने की जरूरत है।

वेद प्रताप वैदिक हिन्दी की लड़ाई अभी भी जारी है। उन्होंने अनेक स्थानों पर हिन्दी प्रतिष्ठित तो कर दिया है, लेकिन संयुक्त राष्ट्र में हिन्दी की वैसी स्थापना अभी नहीं हो पाई है। इस लेखांश में उनकी यही चिंता परिलक्षित होती है:

संयुक्तराष्ट्र संघ में अगर अब भी हिंदी नहीं आएगी तो कब आएगी? हिंदी का समय तो आ चुका है लेकिन अभी उसे एक हल्के-से धक्के की जरूरत है। भारत सरकार को कोई लंबा चौड़ा खर्च नहीं करना है, उसे किसी विश्व अदालत में हिंदी का मुकदमा नहीं लड़ना है, कोई प्रदर्शन और जुलूस आयोजित नहीं करने हैं। उसे केवल डेढ़ करोड़ डॉलर प्रतिवर्ष खर्च करने होंगे, संयुक्तराष्ट्र के आधे से अधिक सदस्यों (96) की सहमति लेनी होगी और उसकी काम-काज नियमावली की धारा 51 में संशोधन करवाकर हिंदी का नाम जुड़वाना होगा। इस मुद्दे पर देश के सभी राजनीतिक दल भी सहमत हैं। सूरिनाम में संपन्न हुए पिछले विश्व हिंदी सम्मेलन में मैंने इस प्रस्ताव पर जब हस्ताक्षर करवाए तो सभी दलों के सांसद मित्रों ने सहर्ष उपकृत कर दिया।

कौन भारतीय है, जो अपने राष्ट्र की भाषा को विश्व-मंच पर दमकते हुए देखना नहीं चाहेगा। जिन भारतीयों को अपने प्रांतों में हिंदी के बढ़ते हुए वर्चस्व पर कुछ आपित्त है, वे भी संयुक्तराष्ट्र में हिंदी लाने का विरोध नहीं करेंगे, क्योंकि वे जानते हैं कि विश्व मंच पर 22 भारतीय भाषाएँ भारत का प्रतिनिधित्व नहीं कर सकतीं। वे यह बर्दाश्त नहीं कर सकते कि विश्व-मंच पर भारत गूँगा बनकर बैठा रहे। उनका उत्कट राष्ट्रप्रेम उन्हें प्रेरित करेगा कि हिंदी विश्व-मंच पर भारत की पहचान बनकर उभरे। उन्हें भारत की बढ़ती हुई शक्ति और संपन्नता पर उतना ही गर्व है, जितना किसी भी हिंदीभाषी को है। वे जानते हैं कि जिस राष्ट्र के मुँह में अपनी जुबान नहीं, वह महाशक्ति कैसे बन सकता है? उसे सुरक्षा परिषद् की स्थायी सदस्यता कैसे मिल सकती है? स्थायी सदस्यता तो बहुत बाद की बात है। पहले कम से कम सदस्यता के द्वार पर भारत दस्तक तो दे। संयुक्तराष्ट्र में हिंदी ही यह दस्तक है।

अगर हमने संयुक्तराष्ट्र में पहले हिंदी बिठा दी तो हमें सुरक्षा परिषद् में बैठना अधिक आसान हो जाएगा। 1945 में संयुक्तराष्ट्र की आधिकारिक भाषाएँ केवल चार थीं। अंग्रेजी, रूसी, फ्रांसीसी, और चीनी। सिर्फ ये चार ही क्यों? सिर्फ ये चार इसलिए कि ये चारों भाषाएँ पाँच विजेता महाशक्तियों की भाषा थीं। अमेरिका और ब्रिटेन, दोनों की अंग्रेजी, रूस की रूसी, फ्रांस की फ्रांसीसी और चीन की चीनी! इन भाषाओं के मुकाबले इतालवी, जर्मन,जापानी आदि भाषाएँ किसी तरह कमतर नहीं थीं लेकिन वे विजित राष्ट्रों की भाषाएँ थी। याने जिस भाषा के हाथ में तलवार थी, ताकत थी, विजय-पताका थी, वही सिंहासन पर जा बैठी। क्या अब 65 साल बाद भी यही ताकत का तर्क चलेगा? जो ढाँचा द्वितीय महायुद्ध के बाद बना था, उसका लोकतंत्रीकरण होगा या नहीं? यदि होगा। तो संयुक्तराष्ट्र के सिंहासन पर विराजमान होने का सबसे पहला हक हिंदी का होगा। यदि 1945 में भारत आजाद होता तो उसकी भाषा हिंदी को संयुक्तराष्ट में अपने आप ही मान्यता मिल जाती।

1945 में जो चार भाषाएँ संयुक्तराष्ट्र की अधिकृत भाषाएँ बनीं, उनमें 1973 में दो भाषाएँ और जुडीं। हिस्पानी और अरबी! इन दोनों भाषाओं को बोलने वाले लगभग दो-दो दर्जन राष्ट्रों में से एक भी ऐसा नहीं था, जिसे महाशक्ति कह सकें या विकसित राष्ट्र मान लें। ये राष्ट्र आपस में मिलकर भी किसी महाशक्ति-मंडल की छवि प्रस्तुत नहीं करते। कई राष्ट्र एक ही भाषा जरूर बोलते हैं लेकिन वे गरीब हैं, पिछड़े हैं, छोटे हैं, पर-निर्भर हैं और अगर वे सशक्त और बड़े हैं तो आपस में झगड़ते हैं, संयुक्तराष्ट्र में एक-दूसरे के विरूद्ध मतदान करते हैं। दूसरे शब्दों में उनकी भाषाओं को संयुक्तराष्ट्र में शक्तिबल के कारण नहीं, संख्याबल के कारण मान्यता मिली।

हिन्दी को तो पता नहीं, किन-किन बलों के कारण मान्यता मिलनी चाहिए। सबसे पहला कारण तो यह है कि हिंदी को मान्यता देकर संयुक्तराष्ट्र अपनी ही मान्यता का विस्तार करेगा। उसके लोकतंत्रीकरण की प्रक्रिया का यह शुभारम्भ माना जाएगा। 65 साल से विजेता और विजित के खाँचे में फँसी हुई संयुक्तराष्ट्र की छवि का परिष्कार होगा। दूसरा, दुनिया के सबसे बड़े लोकतंत्र दुनिया के दूसरे सबसे बड़े देश और दुनिया के चौथे सबसे मालदार देश की भाषा को मान्यता देकर संयुक्तराष्ट्र अपना गौरव खुद बढ़ाएगा। तीसरा, हिंदी को मान्यता देनेका अर्थ है - तीसरी दुनिया और गुट-निरपेक्ष राष्ट्रों को सम्मान देना। भारत इन राष्ट्रों का नेतृत्व करता रहा है। चौथा, हिंदी विश्व की सबसे अधिक समझी और बोली जानेवाली भाषा है। संयुक्तराष्ट्र की पाँच भाषाओं से हिंदी की तुलना करना बेकार है। वह उनसे कहीं आगे है। हाँ, चीनी से तुलना हो सकती है। चीन की अधिकृत भाषा 'मेंडारिन' है। इस भाषा को बोलने-समझनेवालों की संख्या विभिन्न भाषाई-विश्वकोषों में लगभग 85 करोड़ बताई जाती है। उसे 100 करोड़

भी बताया जा सकता है। लेकिन असलियत क्या है? असलियत के बारे में बहुत-से मतभेद हैं। चीन में दर्जनों स्थानीय भाषाएँ हैं। उन्हें लोग दुभाषियों के बिना समझ ही नहीं पाते। मैं स्वयं 8-10 बार चीन घूम चुका हूँ। एक-एक माह वहाँ रहा हूँ। मुझे कई बार दो-दो तरह के दुभाषिए एक साथ रखने पड़ते थे। अगर यह मान लें कि दुनिया में चीनी भाषियों की संख्या एक अरब है तो भी इससे हिन्दी पिछड़ नहीं जाती। आज हिन्दी भाषियों की संख्या एक अरब से भी ज्यादा है। सिनेमा और टीवी चैनलों की कृपा से अब लगभग सारे भारत के लोग हिंदी समझ लेते हैं और जरूरत पड़ने पर बोल भी लेते हैं। अगर मान लें कि दक्षिण भारत के 10-15 करोड़ लोगों को हिन्दी के व्यवहार में अब भी कठिनाई है तो उसकी भरपाई दक्षेस के अन्य सात राष्ट्रों में बसे लगभग 35 करोड़ लोग कर देते हैं। उनमें से ज्यादातर हिन्दी समझते हैं। उनके अलावा विदेशों में बसे दो करोड़ से ज्यादा भारतीय भी हिन्दी का प्रयोग सगर्व करते हैं। अत: संख्याबल के कोण से देखा जाए तो संयुक्तराष्ट्र में हिन्दी को प्रतिष्ठित करना दुनिया के लगभग डेढ़ अरब लोगों को प्रतिनिधित्व देना है।

पाँचवाँ, हिन्दी जितने राष्ट्रों की बहुसंख्यक जनता द्वारा बोली-समझी जाती है, संयुक्तराष्ट्र की पहली चार भाषाएँ नहीं बोली-समझी जाती हैं। याद रहे बहुसंख्यक जतना द्वारा! यह ठीक है कि अंग्रेजी, फ्रांसीसी और रूसी ऐसी भाषाएँ हैं, जिन्हें ब्रिटेन, फ्रांस और रूस के दर्जनों उपनिवेशों में बोला जाता रहा है, लेकिन ये भाषाएँ उन उपनिवेशों के दो-चार प्रतिशत से ज्यादा लोग आज भी नहीं बोलते जबकि हिन्दी भारत ही नहीं, पाकिस्तान, नेपाल, मॉरिशस, ट्रिनिडाड,सूरिनाम,फीजी,गयाना,बांग्लादेश आदि देशों की बहुसंख्यक जनता द्वारा बोली और समझी जाती है। जब इस बहुराष्ट्रीय भाषा में संयुक्तराष्ट्र की गतिविधियाँ टी.वी. पर सुनाई देंगी तो कल्पना कीजिए कि कितने लोगों और कितने राष्ट्रों का संयुक्तराष्ट्र के प्रति जुड़ाव बढ़ता चला जाएगा।

छठा, यदि हिन्दी संयुक्तराष्ट्र में प्रतिष्ठित होगी तो दुनिया की अन्य सैकड़ों भाषाओं के लिए शब्दों का नया खजाना खुल पड़ेगा। हिन्दी संस्कृत की बेटी हैं। संस्कृत की एक-एक धातु से कई-कई हजार शब्द बनते हैं। एशियाई और अफ्रीकी ही नहीं, यूरोपीय और अमेरिकी भाषाओं में भी आजकल शब्दों का टोटा पड़ा रहता है। अन्तराष्ट्रीय विज्ञान और व्यापार के कारण रोज़ नए शब्दों की जरूरत पड़ती है। इस कमी को हिन्दी पूरा करेगी। सातवाँ, इसके अलावा हिन्दी के संयुक्तराष्ट्र में पहुँचते ही दुनिया की दर्जनों भाषाओं को लिबास मिलेगा। वे निवर्सन हैं। उनकी अपनी कोई लिपि नहीं है। तुर्की, इंडोनेशियाई, मंगोल, उज़बेक, स्वाहिली, गोरानी आदि अनेक भाषाएँ हैं, जो विदेशी लिपियों में लिखी जाती हैं। मजबूरी है। हिन्दी इस मजबूरी को विश्व-स्तर पर दूर करेगी। वह रोमन, रूसी और चित्रलिपियों का शानदार

विकल्प बनेगी। उसकी लिपि सरल और वैज्ञानिक है। जो बोलो सो लिखो और जो लिखो, सो बोलो। संयुक्तराष्ट्र में बैठी हिन्दी विश्व के भाषाई मानचितर्को बदल देगी।

यदि हिन्दी संयुक्तराष्ट्र में दनदनाने लगी तो उसके चार ठोस परिणाम एक दम सामने आएँगे। पहला, भारतीय नौकरशाही और नेताशाही को मानसिक गुलामी से मुक्ति मिलेगी। भारत के राज-काज में हिन्दी को उचित स्थान मिलेगा। दूसरा, भारतीय भाषाओं की जन्मजात एकता में वृद्धि होगी। तीसरा, दक्षेस राष्ट्रों में संगच्छध्वं संवदध्वं का भाव फैलेगा। जनता से जनता का जुड़ाव बढ़ेगा। तीसरा, वैश्वीकरण की प्रक्रिया में अंग्रेजी का सशक्त विकल्प तैयार होगा। चौथा, स्वभाषाओं के जरिए होनेवाले शिक्षण, प्रशिक्षण और अुनसंधान की गति तीव्र होगी। उसके कारण भारत दिन-दूनी रात चौगुनी उन्नति करेगा। सचमुच वह विश्व-शक्ति और विश्व-गुरू बनेगा।

राजनैतिज्ञ, लेखक, संपादक